''दो अलग-अलग भारत'': राज्यों के विकास की दो विश्लेषणात्मक वर्णन पद्धतियां (पुनः वितरणात्मक और प्राकृतिक संसाधन आधारित)

13
अध्याय

''हे महामहिम, कृपया इस बात को समझ लीजिए कि भारत दो देश हैं : एक प्रकाशपूर्ण भारत और दूसरा अंधकारमय भारत। महासागर मेरे देश तक प्रकाश लाता है। महासागर के निकट का भारत के मानचित्र का प्रत्येक स्थान समृद्ध है। किन्तु सरिताएं तो भारत में अंधकार का ही संचार करती हैं।''

-''द व्हाइट टाइगर'', अरविन्द अडिगा

इस अध्याय में हम समीक्षा कर रहे हैं कि क्या विदेशी सहायता और प्राकृतिक संसाधन विषयक रोग-विज्ञान से भारतीय राज्य भी ग्रस्त हैं? यहां केन्द्र से पुनः वितरक संसाधन अंतरणों (RRTs) तथा राज्यों को प्राकृति संसाधनों से प्राप्त राजस्व का आंकलन किया जा रहा है। इन अंतरणों और विभिन्न राज्य स्तरीय परिणामों, जैसे कि प्रतिव्यक्ति उपभोग, जीडीपी संवृद्धि, विनिर्माण का विकास, राज्य के अपने कर प्रयास और संस्थागत गुणवत्ता के स्तरों में किसी सकारात्मक संबंध का साक्ष्य नहीं मिल पा रहा है। RRT को लेकर तो कदाचित् कुछ ऋणात्मक संबंध का ही झलक मिल रही है। प्रश्न यह है कि क्या RRT को अधिक गहराई से राज्यों के राजकोषीय और प्रशासकीय प्रयासों के साथ जोड़ा जा सकता है, जैसा कि 13वें वित्त आयोग ने कहा है? एक अन्य विचार पर भी चर्चा होनी चाहिए, यह अधिक RRT पाने वाले और प्राकृतिक संसाधनों के राजस्व पर अधिक निर्भर राज्यों के गृहस्थों को सीधे सार्वलौकिक आधारिक आय (UBI) प्रदान करने का विचार है।

I. विषय प्रवेश

13.1 वर्ष 1980 के बाद से भारत में संवृद्धि का दौर मुख्यतः भारतीय प्रायःद्वीप से जुड़ा रहा है। उन्हीं राज्यों से, जिन्हें ''द व्हाइट टाइगर'' के सूत्रधार ने बेहतर भौगोलिकता या महासागर से निकटतापूर्ण बताया है। विकास के अनुभव बताते हैं कि ऐसी अवस्थितियों से कुछ विशेष लाभ स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं (सेचेज और वार्नर, 1997)। ये राज्य हैं गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडू, कर्नाटक, केरल और आंध्र प्रदेश। ये सचमुच अधिक तेजी से संवृद्धि कर आर्थिक दृष्टि से विकसित हुए हैं।

13.2 परिणाम स्वरूप उन पर नीति एवं शोध स्तर पर शेष राज्यों अर्थात ''अन्य भारत'' की अपेक्षा अधिक ध्यान भी दिया गया है। इस ''अन्य भारत'' में केवल आंतरिक भारत (सरिता सिंचित भारत) ही नहीं बल्कि वनों और प्राकृति संपदाओं का भारत और 'विशेष श्रेणी राज्यों' का भारत भी सम्मिलित है।[1] यह अध्याय उन राज्यों को समर्पित है जो भारत की विकास गाथा की

[1] यह 'विशेष श्रेणीह्न का विचार 1969 में अभावग्रस्त राज्यों को (जो अनेक कारणों से विकास के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं जुटा पा रहे थे), केन्द्रीय सहायता और कर छूट आदि के माध्यम से विशेष सहायता सुलभ कराने की दृष्टि से प्रतिपादित किया गया था। असम, नागालैंड, अरूणाचल, हिमाचल, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, सिक्किम, त्रिपुरा, उत्तराखंड और जम्मू-कश्मीर को विशेष दर्जा दे दिया गया। इस विशेष दर्जे के निर्धारक कारकों में हैं : (i) पर्वतीय एवं कठिन भौगोलिकता, (ii) निम्न जनसंख्या घनत्व/जनजातीय समाज का जनसंख्या में बड़ा अंश, (iii) अंतर्राष्ट्रीय सीमा के निकट स्थिति, आर्थिक और संरचनात्मक पिछड़ापन और (iv) राज्य वित्त का अधारणीय स्तर।

मुख्य धारा से दूर रह गए हैं। किन्तु उनकी अवस्था का विश्लेषण-आंकलन करते समय बृहतर विकास अनुभवों के प्रकाश में ही चर्चा की जा रही है।

13.3 सफल प्रायःद्वीपीय भारत ने विकास के तीन रोचक एवं भिन्न प्रतिमान हमें प्रदान किए हैं : परंपरागत पूर्वी एशियाई विकास विधि, जो विनिर्माण पर आधारित है, (गुजरात और तमिलनाडू); बाहर से धन प्रेषण आधारित प्रतिमान (मुख्यतः केरल); और विशिष्ट ''विलक्षण भारत'' प्रतिमान जो विशेष कौशल सेवाओं पर आधारित है (कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडू, (इनका कोचर आदि, 2006 ने अध्ययन किया है)।

13.4 अन्य राज्य अपेक्षाकृता कम सफल रहे हैं और संभवतः इसीलिए उनपर ध्यान भी कम दिया गया है। किन्तु उनका भी अपना महत्व है, उन्होंने भी किसी न किसी अन्य प्रतिमान का अनुसरण अवश्य किया है। इस अध्याय में ऐसे दो विकास प्रतिमानों पर विचार किया गया है ये हैं : (i) सहायता या विशेष श्रेणी पर आधारित; और (ii) प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित। प्राकृतिक संसाधनों की परिभाषा में कोयला, भूगर्भीय तेल भंडार, प्राकृतिक गैस तथा मुख्य एवं गौण खनिज शामिल हैं, किन्तु वन आच्छादन नहीं। विशाल वन आच्छादन एक ''वन अभिशाप'' भी हो सकते हैं, किंतु उन पर इस अध्याय में चर्चा नहीं की गई है।

13.5 'सहायता' प्रतिमान उत्तर पूर्वी राज्यों और जम्मू कश्मीर के लिए अधिक मान्य है तो प्राकृतिक संपदा प्रतिमान झारखंड, छत्तीसगढ़, ओडिशा, गुजरात और राजस्थान में महत्वपूर्ण रहा है। इस अध्याय में इन राज्यों के विकास अनुभवों की विश्लेषणात्मक समीक्षा की जा रही है।

II. पुनःवितरणीय संसाधनों का प्रभाव

13.6 भारत की स्वतंत्रता के समय अधिकांश अर्थशास्त्रियों का विकास संबंधी चिन्तन बहुत सीधा-सरल था। इसके अनुसार गरीब देश इसलिए गरीब थे कि उनके पास पूंजी नहीं थी। वे इस अभाव पर केवल इस कारण से पार नहीं पा रहे थे कि उनके जन समुदाय कुछ भी बचा पाने की दृष्टि से बहुत गरीब थे। अतः विकास का एकमात्र मार्ग, सभी समस्याओं का एकमात्र समाधान ''विदेशी सहायता'' में छिपा था। इस नियम का एक संभव अपवाद भी दिखाई दे रहा था : विशाल खनिज भंडार संपन्न देश उस 'संपदा' का खनन कर विश्व बाजार में बिक्री से प्राप्त राशियों का भौतिक या मानवीय पूंजी में निवेश कर सकते थे। किन्तु शेष सभी देशों को तो ''विदेशी सहायता'' पर निर्भरता के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था।

13.7 किन्तु भारत इस विमर्श से कभी भी पूर्णतः सहमत नहीं रह पाया। वर्षों तक इसने सहायता स्वीकार तो की है, किन्तु यह यथा संभव अपने संसाधनों पर भी भरोसा करता रहा है, ताकि शीघ्रतिशीघ्र विदेशी सहायता पर निर्भरता की विवशता का निवारण हो सके। यह विकास युक्ति सफल भी रही है और ईस्टरली (2003), राजन और सुब्रमण्यम आदि से प्रारंभ कर अनेक अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्री इस विधि के सद्गुणों की अनुभूति करने लगे हैं। इस 'हृदय परिवर्तन' का एक बड़ा कारण भी है : शोघकर्ताओं ने पाया है कि सहायता और संवृद्धि के बीच कोई सुदृढ़ धनात्मक संबंध ही नहीं है।

13.8 ऐसा क्यों है? इस विषय में अनेक सिद्धांत प्रतिपादित हुए हैं। एक अवधारणा तो यही है कि सहायता संसाधनों के लिए पर-निर्भरता अर्थात बाहर से धन प्रवाह पर निर्भरता को बढ़ावा देती है। ऐसे सहायता पाने वाले देश न अपने कर आधार को विकसित कर पाते हैं औ न ही अधिक व्यापक स्तर पर संस्थागत संरचना को। आगे आर्थिक विकास के लिए सकल स्तर पर संसाधनों की सुलभता से कहीं अधिक महत्व संस्थाओं, कर राजस्व और संप्रेरणाओं का पाया गया है। ब्रॉटिग्म और नैक (2004); आजम, देवराजन और ऑ कॉनेल (1997) तथा ऐडम और ऑ कॉनेल (1999) ने इन प्रभावों को बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया है।

13.9 सहायता का एक संभावित अहितकर प्रभाव 'डच रोग' माना जाता है। उत्तरी सागर में प्राकृतिक गैस भंडार मिलने का नीदरलैंड के आंतरिक अर्थतंत्र पर ऐसा ही प्रभाव हुआ था। इस अनायास प्राप्ति से वास्तविक विनिमय दर में सुधार हुए, अतिरिक्त आय आंतरिक क्षेत्र में खर्च होने लगी और स्थानिक अर्थतंत्र प्रेरित सेवाओं जैसी गैर अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक चीजों के दामों में वृद्धि होने लगी। सेवाओं की उच्च कीमतों से निर्यात और आयात स्पर्धी उद्योगों की लाभप्रदता कुंठित हो गई। परिणाम स्वरूप देश में वि-उद्योगीकरण क्रम प्रारंभ हो गया और अर्थव्यवस्था में विनिर्माण क्षेत्र का अंश घटता

चला गया (कोर्डन और नीयरी, 1982)। ऐसे ही प्रभाव कनाडा, आस्ट्रेलिया, रूस और अफ्रीका में भी देखे गए हैं।

13.10 इन अंतर्राष्ट्रीय उदाहरणों और अपने विकास अनुभवों के बावजूद भारत ने प्रथम विकास अर्थशास्त्रियों के सुझाए पथ का ही अनुसरण किया है। इसने कतिपय गरीब राज्यों को बड़े स्तर पर संसाधन अंतरित कर उनके विकास को उन्नति की ओर अग्रसर करने का प्रयास किया है। क्या जहां अन्य युक्तियां विफल रही हैं वहां यह सफल हो पाई है? कहीं प्रारंभिक विकास संबंधी सर्वानुमति सही तो नहीं थी? यदि नहीं, तो विकल्प क्या हैं?

13.11 इस भाग में हम भारतीय राज्यों के रिकार्ड की, एक उत्तर पाने की दृष्टि से छानबीन कर रहे हैं। इस आशा में कि यह केन्द्र द्वारा कोष संसाधनों के वितरण की रचना की प्रक्रिया को अधिक बेहतर जानकारियों पर आधारित बना पाएगी।

III. पुन:वितरणात्मक संसाधन अंतरण : भारतीय राज्यों से साक्ष्य

13.12 यहां पहला कार्य तो भारत के आंतरिक संदर्भ में सहायता की संकल्पना की परिभाषा करना है। अभी तक राज्य सरकारों को केन्द्र से कई स्रोतों-प्रवाहों के रूप में धन मिलता रहा है : (i) वित्त आयोग के निर्देश पर केंद्रीय करों में अंश; (ii) योजना और गैर-योजना अनुदान; और (iii) योजना और गैर योजना ऋण और अग्रिम। इन कोषों का योगफल 'राज्यों को सकल अन्तरण'' कहलाता है और यह सारी राशियां ''सहायता''[2] नहीं कही जा सकती।

13.13 सकल अन्तरण में एक सशक्त पुन:वितरक तत्व भी है। 'विशेष श्रेणी' ही कुछ राज्य विशिष्ट लक्षणों की ओर संकेत कर देती है। इनके कारणों से कुछ राज्य अन्तरणों, विशेषकर रियायती अनुदानों, पर अधिक निर्भर रह जाते हैं। अन्य राज्यों की तुलना में अपनी विकास आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए भी विशेष श्रेणी वाले राज्य ऐसे अनुदान प्रवाहों पर अधिक ही निर्भर रहते हैं। किन्तु केन्द्र से राज्यों को अंतरित पुन:वितरक संसाधनों का स्वरूप 'सहायता' से दो प्रकार से भिन्न होता है। एक तो ये आंतरिक अंतरण हैं और विदेशी सहायता की भांति देश की निर्वर्त्य आय में वृद्धि नहीं करते; दूसरे, यहां दानी और लाभार्थी संबंध का स्वरूप भी अलग रहता है, क्योंकि जिन अंतरणों से यहां लाभार्थी को धन प्राप्ति होती है उनको निर्धारण करने वाली राष्ट्रीय प्रशासन संस्थाओं में इन राज्यों की भी भागीदारी होती है। इस अध्याय का ध्येय इन अंतरणों के स्थान पर 'कुछ और' सुझाने का नहीं है। यहां तो हम इनके प्रभावों की ही समीक्षा करना चाहते हैं। हम यह परिप्रेक्ष्य स्वीकार करके चल रहे हैं कि ये अन्तरण क्षेत्रीय विषमताओं से बचाव करते हैं और राजकोषीय असंतुलनों का समाधान करते हैं। अत: इनका महत्व अत्यंत निर्णायक है।

13.14 इस जानकारी के संदर्भ में यह अध्याय ''पुन:वितरक संसाधन अन्तरण'' (RRT) की अवधारणा का प्रयोग कर रहा है। किसी राज्य को RRT की परिभाषा उसे देश के सकल घरेलू उत्पाद में अंश का समंजन करने के पश्चात हुए सकल अंतरण[3] द्वारा की जाती है (परिभाषा D1)। अत: RRT सकल अंतरण के समान नहीं है। इस समंजन द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि किसी राज्य द्वारा जीडीपी में किए गए योगदान से अधिक अंतरित राशि ही RRT का अंश मानी जाए। एक वैकल्पिक परिभाषा भी है : राज्य के अपने कर राजस्व द्वारा मापित देश व्यापी कर प्रयास में अंश के समंजन के पश्चात राज्य को प्राप्त अतिरिक्त सकल अंतरण पर भी यह जांचने के लिए ध्यान दिया जाता है कि पहली परिभाषा के प्रयोग के परिणाम सटीक हैं या नहीं।

13.15 RRT की परिभाषा राज्य सरकारों द्वारा किए गए व्यय पर इन अंतरणों के प्रभाव को समाहित नहीं कर रही। यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि केन्द्र के अपने व्यय के फलस्वरूप सीधे हो सकने वाले

---

[2] कुछ अन्तरण केन्द्र द्वारा बनाई योजनाओं के लिए है तो कुछ राज्य निर्मित संचालित योजनाओं के लिए। अन्य का ध्येय राज्य की किन्हीं विशेष परिस्थितियों जैसे कि क्षेत्रीय पिछड़ेपन या फिर प्राकृतिक आपदा के बाद पुन:निर्माण में सहायता भी है।

[3] राजकोषीय आंकड़े रिजर्व बैंक के प्रकाशन; राज्य वित्त : एक अध्ययन, 2016 से लिए गए हैं।

रेखाचित्र 1 : सकल अंतरण और RRT प्रति व्यक्ति (रूपए हजार, वार्षिक, 2015)

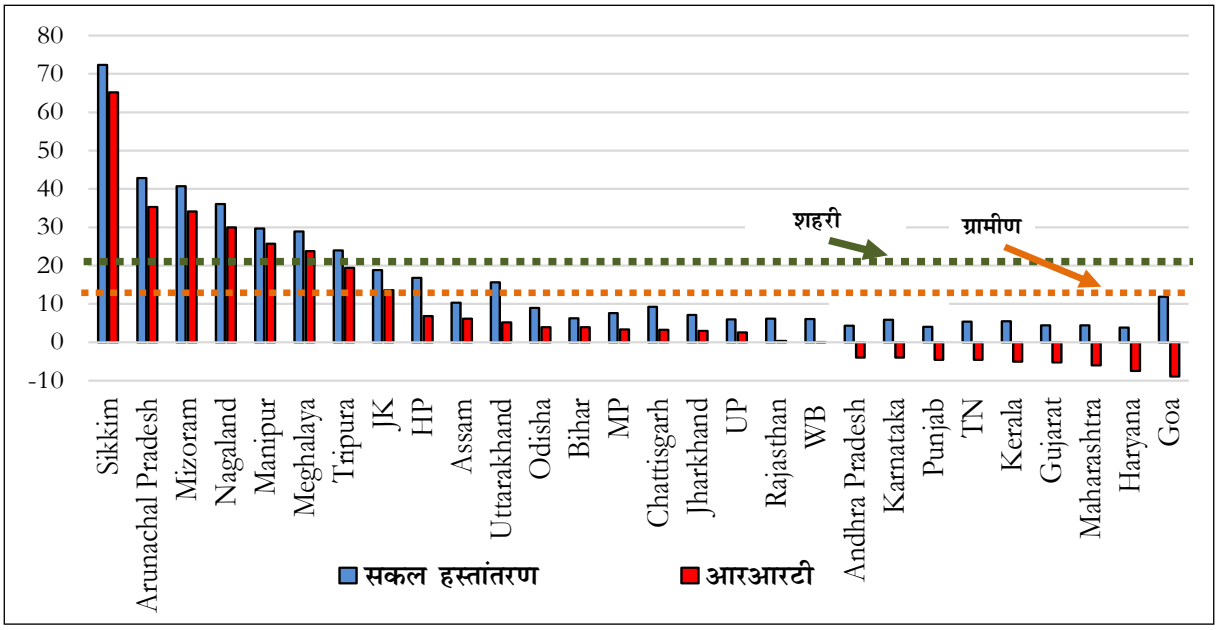

पुन:वितरण भी इससे बाहर ही रखे गए हैं।[4] अत: RRT अंतरणों का एक विशिष्ट मापक है, यह पुन:वितरणों का निश्चयात्मक मापक नहीं है। परिशिष्ट में GSDP के अनुपात के रूप में सकल अंतरणों और RRTs का चित्रांकन किया गया है।

13.16 रेखाचित्र 1 RRT के ह्रासमान स्तरानुसार राज्यों की क्रमिकता दर्शा रहा है। यह राशियां प्रतिव्यक्ति आधार पर उन्हें प्राप्त हुई है। सकल प्रतिव्यक्ति अंतरण भी यहीं अंकित किए गए हैं। सबसे अधिक पाने वाले 10 राज्य हैं : सक्किम, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैंड, मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और असम (ये सभी विशेष श्रेणी वाले राज्य हैं)। इन शीर्षस्थ 10 राज्यों को प्रतिव्यक्ति वार्षिक सकल अंतरण रू. 32000 हैं और इनका 81 प्रतिशत अंश अर्थात रू. 26000, तो 2015 में RRT के रूप में ही मापित हुआ है।

रेखाचित्र 3क : प्रतिव्यक्ति GSDP और प्रति व्यक्ति RRT*

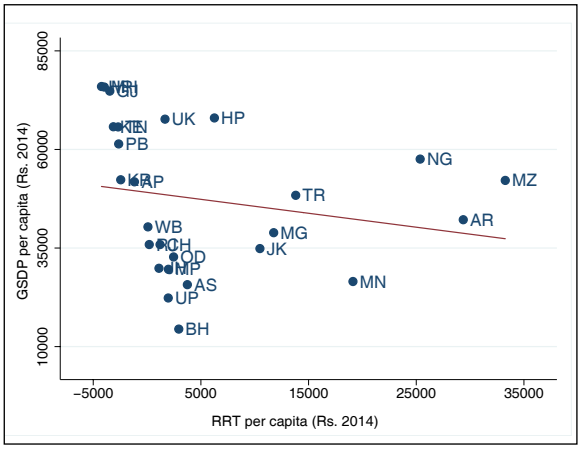

रेखाचित्र 3ख : प्रतिव्यक्ति उपभोग व्यय (MPCE) और प्रतिव्यक्ति RRT

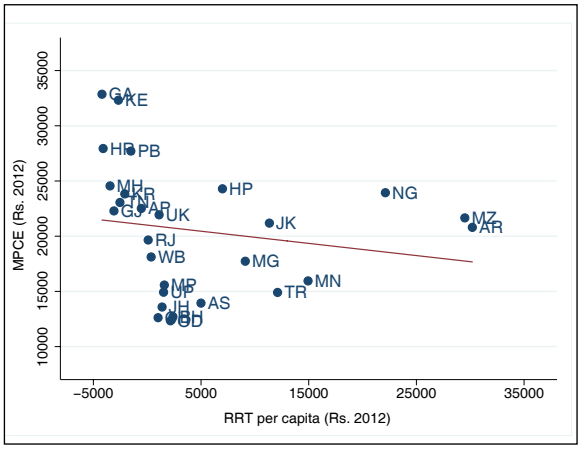

* बहिष्शायी समंजन के बाद। गोवा और सिक्किम यहां नहीं दर्शाए गए हैं। 3ख में गोवा को निकालने के बाद दाहिनि ओर ढाल बना रहता है।

[4] इस अध्याय में 2005-06 से 2013-14 के बीच मनरेगा, सर्व शिक्षा अभियान आदि के लिए केन्द्र द्वारा सीधे उनके संचालक अधिकरणों (जनपद प्रशासनों) को अंतरित राशियां विश्लेषण में सम्मिलित नहीं हैं।

13.17 रेखाचित्र में पीली और हरी रेखाएं 2015 के लिए अखिल भारतीय ग्रामीण एवं शहरी प्रति व्यक्ति वार्षिकीकृत गरीबी रेखाएं दिखा रही हैं।[5] वार्षिक प्रतिव्यक्ति RRT के प्रवाह असम को छोड़ शेष सभी पूर्वोत्तर राज्यों, और जम्मू कश्मीर के अखिल भारतीय गरीबी रेखा द्वारा (ग्रामीण) परिभाषित वार्षिक प्रति व्यक्ति उपभोग से अधिक है।

13.18 रेखाचित्र 3क तथा 3ख में 2013-14 के प्रति व्यक्ति GSDP के स्तर तथा मासिक प्रतिव्यक्ति उपभोग (NSSO का 68वां दौर, 2011-12) व्यय को प्रतिव्यक्ति RRT (2013-14 और 2011-12) के अनुसार अंकित किया गया है। हमें एक ऋणात्मक संबंध ही दिखाई दे रहा है, जो GSDP प्रतिव्यक्ति के संदर्भ में कुछ अधिक सशक्त है। दूसरे शब्दों में गरीब प्रांतों को, जैसा कि आशा की गई थी, उच्चतम स्तर पर अंतरण प्राप्त हो रहे हैं। किन्तु पिछले कई दशकों से इसी प्रकार उच्च RRT पा रहे राज्यों में से एक, हिमाचल प्रदेश, को छोड़कर सभी प्रतिव्यक्ति GSDP के निम्न स्तरों पर अटके हुए दिखाई देते हैं। इन राज्यों को लाल रेखा द्वारा दर्शाए गए औसत स्तर को छूने के लिए भी गंभीर प्रयास करने की आवश्यकता है। ये राज्य उपभोग पर भी औसतन कम खर्च कर रहे हैं। हां अपवाद भी है : नागालैंड और मिजोरम की GSDP तथा उपभोग के प्रतिव्यक्ति मान औसत से उच्चतर है। साथ

रेखाचित्र 4क : प्रतिव्यक्ति आय की संवृद्धि और RRT

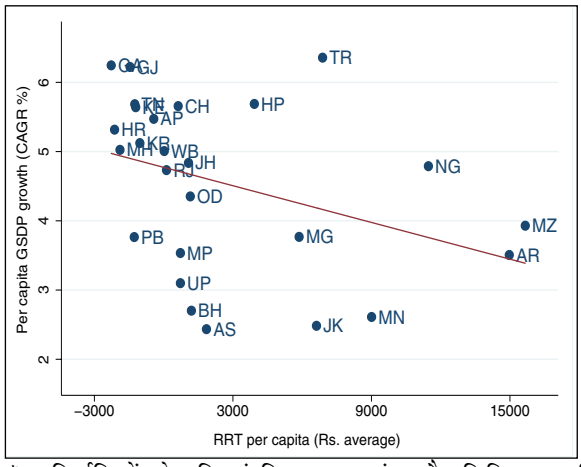

रेखाचित्र 4ख : GSDP में विनिर्माण का अंश और RRT

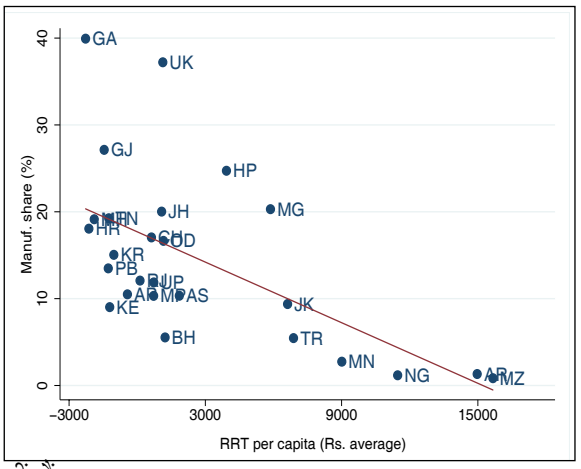

* बहिर्वासियों के प्रति संतुलित। उत्तराखंड और सिक्किम शामिल नहीं हैं।

रेखाचित्र 4ग : राजकोषीय प्रयास और RRT

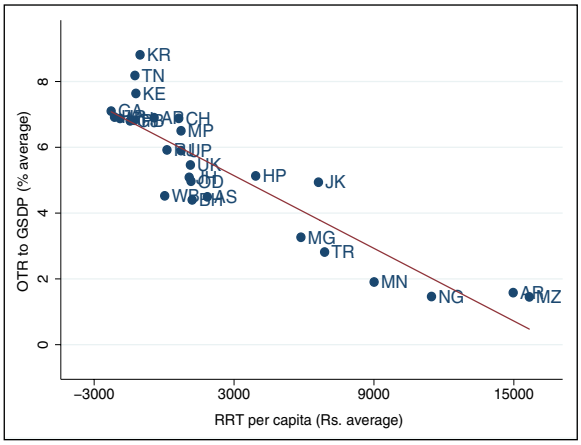

रेखाचित्र 4घ : प्रशासनिक दक्षता और RRT

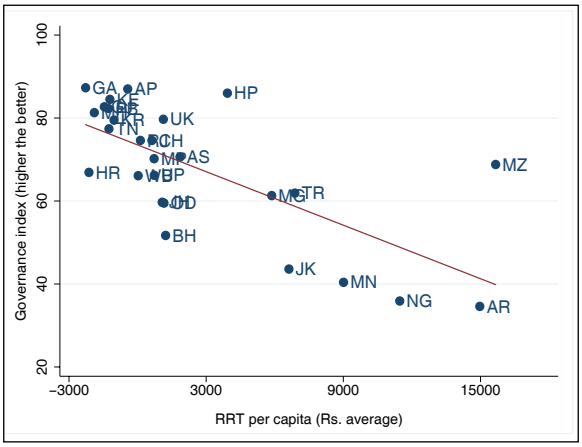

[5] अब भंग हो चुके योजना आयोग ने 2011-12 की गरीबी रेखाओं का आंकलन किया था। उसी रेखा को CPI(IW) तथा CPI (RW) के लिए समंजित कर 2015 की कीमतों के अनुरूप बनाया गया है।

ही जम्मू-कश्मीर भी उच्च स्तर पर RRT पाने वाला एक उच्च उपभोग प्रांत है।[6]

13.19 क्या RRT ने राज्यों को बेहतर निष्पादन में सहायता दी है? रेखाचित्र 4क से 4ग में RRT को प्रतिव्यक्ति GSDP की संवृद्धि, GSDP में विनिर्माण का अंश और राजकोषीय प्रयास (GSDP में निजी कर राजस्व) के अंश के साथ अंकित किया गया है। ये सब आंकड़े 1993-94 से 2014-15 की औसत हैं, (उन राज्यों के लिए जो 2000-01 से पूर्व विद्यमान थे)। इस वर्ष में गठित राज्यों के लिए 2000-01 से 2014-15 की औसत ली गई है।

13.20 परिणाम काफी चौंकाने वाले हैं। यदि RRT अधिक है तो :

- संवृद्धि दर धीमी है।
- GSDP में विनिर्माण का अंश कम है।[7]
- निजी कर राजस्व भी कम है।

13.21 कुल मिलाकर प्रशासन की गुणवत्ता कैसी है? इसे हम RRT प्रवाह को प्रशासन दक्षता के किसी उपयुक्त सूचक के साथ मिलाकर देख सकते हैं। कोचर आदि (2006) का तर्क है कि बिजली की आपूर्ति में प्रेषण एवं वितरण की हानियों को प्रशासनिक दक्षताहीनता का एक अच्छा सटीक सूचक माना जा सकता है। ये हानियां प्रदेश में संरचना और संस्थागत दुर्दशा की झलक देती है। इस भाग में हम इससे कहीं अधिक व्यापक संकल्पना का प्रयोग कर रहे हैं। यह है सकल तकनीकी और वाणिज्यिक हानियां (ATC हानियां)। इसमें तकनीकी हानियों और बिजली की चोरी से आगे बढ़कर अन्य वाणिज्यिक हानियां भी शामिल हो जाती है, जो प्रेषण एवं वितरण को निवल ऊर्जा आदान के प्रतिशत द्वारा मापी जा रही थी। इस सकल हानि को एक सूचक की परिभाषा के लिए प्रयोग किया जा रहा है।[8] रेखाचित्र 4घ में इस सूचक और RRT के मान अंकित किए गए हैं। फिर एक बार यही सिद्ध होता है कि उच्च RRT पाने वाले राज्य प्रशासनिक दक्षता की इस कसौटी पर भी पिछड़ रहे हैं। हां, उत्तरपूर्व में मिजोरम का निष्पादन महत्वपूर्ण रूप से बेहतर रहा है।

13.22 इन सबसे संकेत मिलता है कि एक ''RRT अभिशाप'' विद्यमान है। किन्तु यह सुझाव प्रमाण नहीं है। संकेत से प्रमाण की ओर बढ़ने के लिए यह जानना जरूरी है कि क्या RRT की परिभाषा में बदलाव होने पर भी यही प्रवृत्ति सुदृढ़ बनी रहती है। वास्तव में ऐसा ही है। यदि RRT को सकल राजस्व में राज्य के अंशदान से ऊपर मिलने वाली (अधिक) राशि के रूप में परिभाषित कुल अंतरण माना जाता तो भी परिणाम परिवर्तित नहीं होते। यह भी रोचक बात है कि बिना किसी समंजन के यदि केन्द्र से राज्यों को किए गए सकल अंतरण देखें, तो भी यही प्रवृतियां बनी रहती हैं।

13.23 अगला प्रश्न यह जानना है कि कारण क्या है? आखिर सारा निकृष्ट निष्पादन अधिक RRT का परिणाम तो नहीं होगा। यह कारण की खोज हमें बिल्कुल विपरीत दिशा में ले जा सकती हैं, कहीं अधिक अंतरण इसलिए तो नहीं दिए जा रहे कि राज्य का निष्पादन पर्याप्त रूप से अच्छा नहीं है। औपचारिक सांख्यिकीय प्रतीपगमन द्वारा जांच से पूर्व इस प्रश्न का निपटारा करना आवश्यक है अन्यथा RRT का अनुमानित प्रभाव पूर्वाग्रहगस्त हो जाएगा।

13.24 RRT के प्रभावों का भरोसेमंद अनुमान पाने के लिए अंतरणों के उन अंशों को आंकलन से बाहर रखना आवश्यक है जो इस अध्याय में चर्चित आर्थिक परिणामों से संबंधित नहीं हों (अर्थात संवृद्धि, विनिर्माण अंश, राजकोषीय प्रयास और प्रशासन)। इस प्रश्न का निदान करने की एक विधि तो व्याख्या चर RRT के लिए किसी सहायक/समवर्ती चर की पहचान करना है। यह RRT के साथ तो सशक्त रूप से सह संबंधपूर्ण होगा, किन्तु आर्थिक परिणामों और प्रशासन के साथ नहीं। फिर हम अपनी रूचि के प्रत्येक चर पर RRT के प्रभाव का आंकलन उक्त समवर्ती चर पर प्रतीपगमन द्वारा कर सकते हैं। परिशिष्ट में समवर्ती चर प्रतीपगमन विधि समझाई गई है।

---

[6] ये राज्य हैं झारखंड, छत्तीसगढ़ और उत्तराखंड।

[7] विनिर्माण अंश का GSDP अनुपात 2011-12 से 2014-15 का औसत है। यह CSO की 2011-12 की श्रृंखला के अनुसार है। औसत RRT और GSDP के अनुपात ऋणात्मक संबंध दिखा रहे है (2005-15 को छोड़कर)।

[8] सूचक की परिभाषा ऐसे की गई है : i=k100-[ATC हानि] - यहां सूचक के उच्चतर मान बेहतर प्रशासन दर्शाते है।

रेखाचित्र 5क : प्रतिव्यक्ति GSDP संवृद्धि और प्रतिव्यक्ति RRT, भूपरिवेशटन के समंजन के बाद

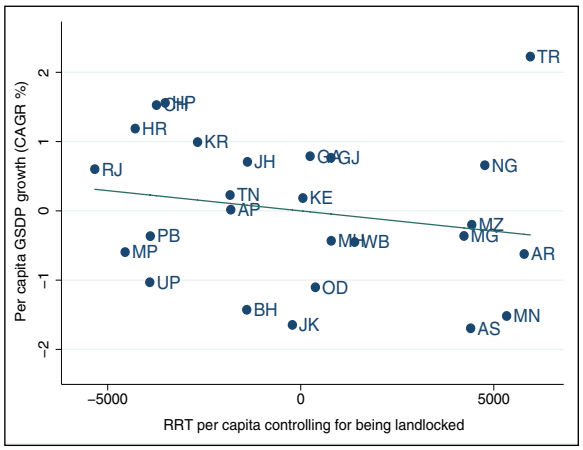

रेखाचित्र 5ख : विनिर्माण और प्रतिव्यक्ति RRT भू-परिवेशटन के समंजन के बाद

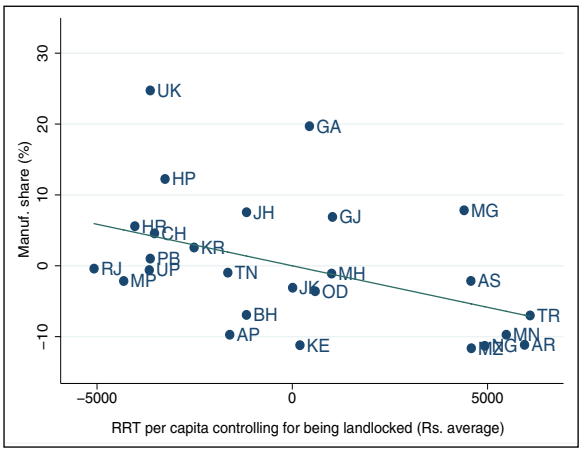

रेखाचित्र 5ग : राजकोषीय प्रयास और प्रति व्यक्ति RRT, भू-परिवेशटन के समंजन के बाद

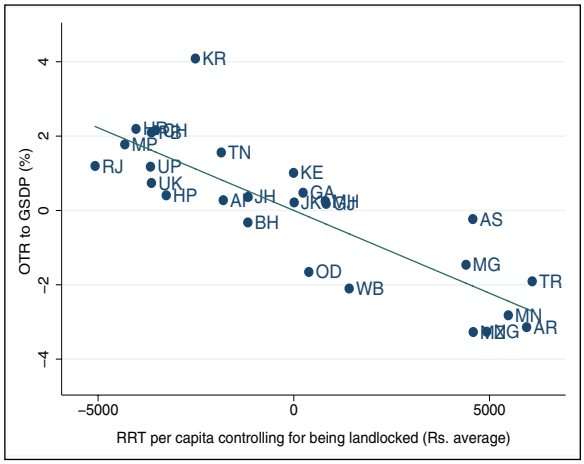

रेखाचित्र 5घ : प्रशासन सूचक और प्रतिव्यक्ति RRT, भू-परिवेशटन के समंजन के बाद

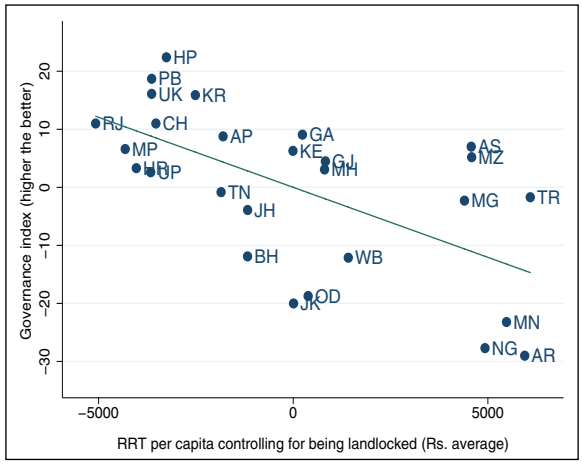

13.25 इस नए प्रतीपगमन से भी हमारे पूर्व उल्लेखित परिणामों/प्रवृतियों की पुष्टि ही हो रही है। रेखाचित्र 5क से 5घ में ये परिणाम चित्रित हैं किसी राज्य के भू-परिवेशिटत होने का प्रावधान करते हुए हम पाते हैं कि RRT के अधिक प्रवाहों के प्रतिव्यक्ति GSDP की संवृद्धि, पर कोई प्रभाव नहीं हैं और इसके विनिर्माण अंश, राजकोषीय प्रयास तथा प्रशासन पर नकारात्मक प्रभाव संभव है।[9]

13.26 एक अन्य रूप में भी परंपरागत विकास दर्शन पलटा जा चुका है। प्रारंभ में प्राकृतिक संसाधन संपन्नता को निम्न बचत-निम्न पूंजी-विकास के पाश से निकल पाने का एक मार्ग मानते थे। किन्तु अब अतीत के अनुभव यही बता रहे हैं कि संसाधन संपन्न अर्थव्यवस्थाएं इनकी दुर्लभता अनुभव कर रहे देशों की अपेक्षा धीमी गति से ही संवृद्धि कर पाती हैं। आर्थिक भूगोलविद् रिचर्ड ऑटी ने ऐसी दशा के लिए ''संसाधन अभिशाप'' की संज्ञा गढ़ी है। इसके बाद से अनेक अध्येताओं ने इस घटनाक्रम के अध्ययन किए हैं (देखें : सैचेज और वार्नर, 1995, 99; सला-ई-मार्टिन और सुब्रहमण्यम 2003 और रोस, 2014)।

[9] भू-परिवेशिटत राज्य की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की लागतें अधिक होती है, यह उसके विनिर्माण विकास और संवृद्धि के प्रयासों को कुछ कुंठित कर देता है। सैन्चेज और वार्नर (1997) का अनुमान था कि एक भू-परिवेशिटत देश की संवृद्धि दर महासागर तट वाल देशों से 0.58 प्रतिशत कम रह जाती है।

13.27 विदेशी सहायता की ही भांति संसाधन प्रचुरता के साथ भी संवृद्धि का ऋणात्मक संबंध एक अवधारणागत चुनौति प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के घटनाक्रम के तीन संभव सूत्रों की चर्चा आर्थिक रचनाओं में की गई है। सबसे पहला तो यही कि प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन लगान भाड़ा सृजक होता है। यह भीषण भाड़ा पाने वाले व्यवहार (भुक्खडता प्रभाव) के माध्यम से भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है। दूसरे, प्राकृतिक संसाधनों का स्वामित्व देशों को वस्तु कीमतों में बड़े उच्चावचनों का सामना करने को विवश कर देता है, उससे जीडीपी संवृद्धि में अस्थिरता आ जाती है। और तीसरे विदेशी सहायता की ही भांति संसाधन स्वामित्व देश को ''डच रोग ग्रस्तता'' की ओर अधिक संवेदनशील बना देता है।

13.28 संसाधन अभिशाप विषयक अधिकतर शोध प्रयास विभिन्न देशों के परिवेशों की तुलनाओं पर आधारित रहे हैं और इसी कारण भारतीय राज्यों के संदर्भ में इस विश्लेषण को लागू करने के प्रयास बहुत विचित्र लग रहे हैं। ये राज्य तो खनिज संपदा संपन्नता को लेकर बहुत ही विविधताओं से परिपूर्ण हैं। वैसे यही विधि कुछ दृष्टियों से बहुत उपयोगी भी हो सकती है, जैसे कि 2000 में मध्य प्रदेश से छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश से उत्तराखंड और बिहार से झारखंड को अलग किया गया है, और इस विभाजन ने संयुक्त प्रांतों की खनिज संपदाएं नवगठित राज्यों को सौंप दी है। यहां अध्ययन का एक बहुत स्वभाविक सा सुअवसर प्रतीत हो रहा है।

V. प्राकृतिक संसाधन और भारतीय राज्यों से प्राप्त साक्ष्य

13.29 उक्त राज्य विभाजनों का ध्यान रखते हुए नवगठित राज्यों पर ''संसाधन अभिशाप'' का आंकलन करने के लिए विश्लेषण अवधि को दो भागों में बांट दिया गया है (1981-2000 तथा 2001-2014)। यहां भी विश्लेषण के उन्हीं चरों का प्रयोग किया गया है, जिनकी पहचान RRT विषयक पूर्ववर्ती भाग में की गई थी। रेखाचित्र 6 में मूल्यानुसार प्रति व्यक्ति खनिजों के अंश दिखाए गए हैं। खनिज मूल्यों में ईंधन (कोयला, लिग्नाइट, कच्चा तेल (केवल धरातलीय) और प्राकृतिक गैस)[10] सभी धात्विक और गैर धात्विक खनिज तथा गौण खनिजों के मूल्य शामिल हैं। इस परिभाषा के अनुसार खनिज संपदा संपन्न राज्य हैं : झारखंड, छत्तीसगढ़, ओडिशा, राजस्थान और आश्चर्यजनक रूप से गुजरात भी।[11]

13.30 प्राकृतिक संसाधन उपलब्धता के प्रभाव के आंकलन की एक विधि तो यह जानना है कि क्या इन क्षेत्रों के जन समुदाय अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा गरीबी से

रेखाचित्र 6 : प्रतिव्यक्ति खनिज मूल्य (रूपए हजार, 2014)

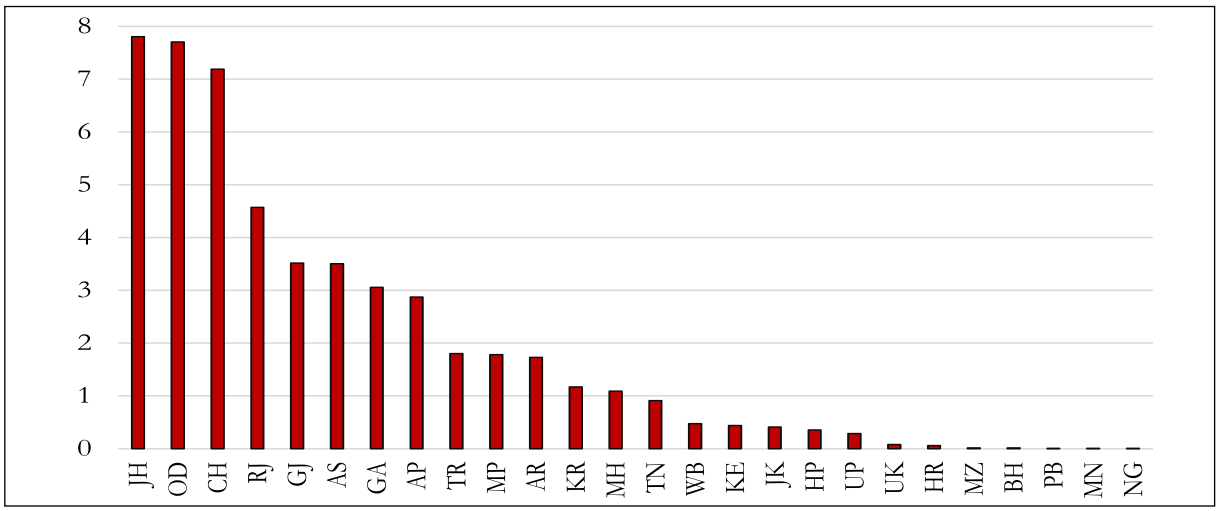

[10] आंकड़े CSO प्रकाशित आंकड़ा सार के विभिन्न वार्षिक अंकों से लिए गए हैं। रेखाचित्र 6 के आंकड़ों में मेघालय नहीं है।

[11] राजस्थान और गुजरात में खनिज मूल्य प्रतिव्यक्ति के स्तर खनिज संपन्न मध्यप्रदेश से अधिक होना हैरान कर सकता है। किन्तु गुजरात के भूगर्भ से कच्चे तेल, प्राकृतिक गैस और लिग्नाइट का बहुत उत्पादन हो रहा है। इसी प्रकार राजस्थान से प्राकृतिक गैस और तांबे, सीसे तथा जिंक के खनिजों का बहुत उत्पादन हो रहा है।

ऊपर उठ पाने में अधिक सफल रहे हैं? इसके लिए हमें गरीबी की प्रवृत्तियों[12] को लेकर खनिज संपन्न तथा अन्य राज्यों की 1993-94 से 2011-12 की अवधि में तुलना की है (NSSO के आंकड़े 2011-12 तक ही सुलभ है)। पहली झलक में तो खनिज संपन्न राज्य सफल लगते हैं। दो दशकों में उनका गरीबी अनुपात 31 प्रतिशत कम हुआ है जबकि अन्य राज्यों में यह कमी 28.5 प्रतिशत रही है।

तालिका 1 : गरीबी में कमी की तुलना

	1993-94		2011-12	
	अजजा	**सभी**	**अजजा**	**सभी**
खनिज संपन्न राज्य	70.5	48.0	53.7	17.1
अन्य राज्य	57.6	39.5	35.1	11.0

स्रोत: गरीबी रेखा एनएसएसओ यूनिट लेवल डाटा से आकलित है। पूर्ववर्ती योजना आयोग व तेंदुलकर समिति की रिपोर्ट से आकलित।

13.31 किन्तु एक अन्य परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो खनिज संपन्न प्रांत कम सफल दिखाई पड़ते हैं। तालिका 1 दर्शा रही है कि संवृद्धि सफलता के लाभ समाज के सभी वर्गों को समान रूप से प्रवाहित नहीं हो पाए। इन खनिज संपन्न राज्यों में अनुसूचित जनजातियों की बहुलता है और इन्हीं समुदायों की गरीबी में मात्र 17 प्रतिशत की गिरावट आई है। यह अन्य राज्यों में इन समुदायों की गरीबी में गिरावट (22 प्रतिशत) से भी कम है।

13.32 जब संसाधन मूल्यों का आर्थिक परिणामों के साथ सहसंबंध आंकलित करते है तो उस समय भी यही द्वैध (दोहरापन, दुभांत) दिखाई देता है। एक ओर तो रेखाचित्र 7क, 7ख ऋणात्मक सह संबंध दिखा रहे हैं, इनमें 2012 में प्रतिव्यक्ति मासिक उपभोग और प्रतिव्यक्ति GSDP (2014) में प्रतिव्यक्ति खनिज मूल्य के साथ अंकित किया गया है। यह स्पष्ट हो रहा है कि संसाधन संपन्न राज्य, विशेषकर झारखंड, छत्तीसगढ़ और ओडिशा में प्रतिव्यक्ति GSDP के स्तर निम्न है (यहां गुजराज अपवाद है), और प्रतिव्यक्ति मासिक उपभोग भी कम है। रेखाचित्र 7क यह भी स्पष्ट कर रहा है कि इस ऋणात्मक संबंध का संचालन तो चार शीर्ष खनिज संपन्न राज्य, झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़ और राजस्थान कर रहे हैं।

13.33 दूसरी ओर रेखाचित्र 8क और 8ख यह भी दर्शा रहे हैं कि अब (कुछ समय से) यह संबंध बदल रहा है। यहां मध्यप्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश के 2000 में विभाजन का प्रभाव आंकने के लिए सकल अवधि को दो उपअवधियों में विभाजित कर दिया गया है। रेखाचित्र 8क में प्रति व्यक्ति खनिज उत्पादन और प्रतिव्यक्ति

रेखाचित्र 7क : प्रतिव्यक्ति GSDP और प्रतिव्यक्ति खनिज मूल्य, 2014

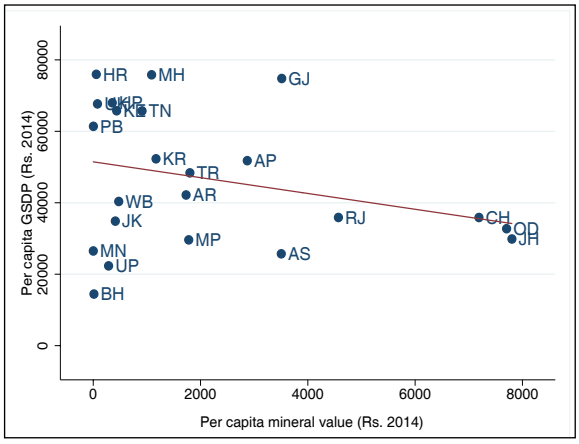

रेखाचित्र 7ख : MPCE और प्रतिव्यक्ति खनिज मूल्य* (2012)

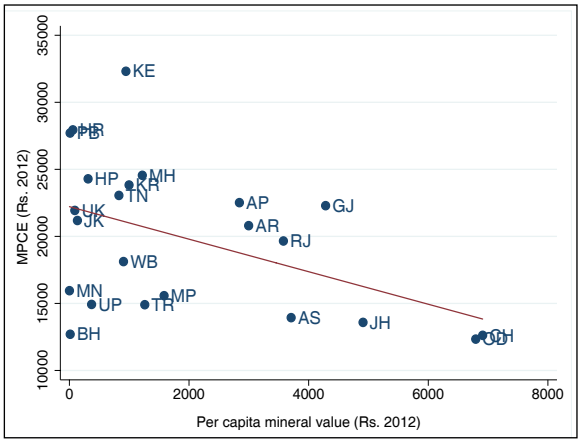

[12] यह गरीबी रेखा से नीचे की जनता के सकल जनसंख्या से अनुपात द्वारा परिभाषित है। गरीबी के विश्लेषण के लिए खनिज संपन्न राज्यों में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा और पं. बंगाल को सम्मिलित किया गया है।

GSDP की चक्रवर्धी संवृद्धि दरों (AGR)[13] का संबंध दिखाया गया है। यह 1981-2000 तक ऋणात्मक था, किन्तु 2001-14 की अवधि में (रेखाचित्र 8ख) यह निश्चयात्मक नहीं है।

13.34 यदि भारतीय राज्यों के विकास अनुभव को भी ''डच व्याधि'' की भांति ''संसाधन अभिशाप'' का दंश लगा है तो इसका एक सूचक GSDP में विनिर्माण के अंश में गिरावट होगा। रेखाचित्र 9 में संसाधनों के मूल्य और GSDP[14] में विनिर्माण के औसत अंश के बीच संबंध दर्शाया गया है। यहां भी यही प्रतीत हो रहा है कि यह संबंध कमजोर ही है।

रेखाचित्र 8क : प्रतिव्यक्ति GSDP संवृद्धि और प्रतिव्यक्ति खनिज मूल्य (1981-2000)*

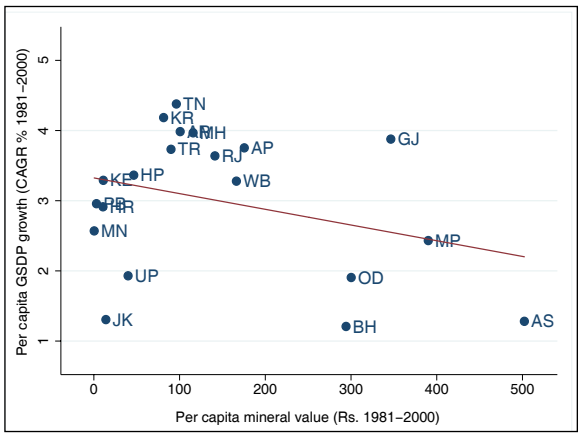

*बहिर्वासियों के प्रति संतुलित। गोवा और मेघालय शामिल नहीं हैं।

रेखाचित्र 9 : विनिर्माण का अंश और प्रतिव्यक्ति खनिज मूल्य (2001-14)

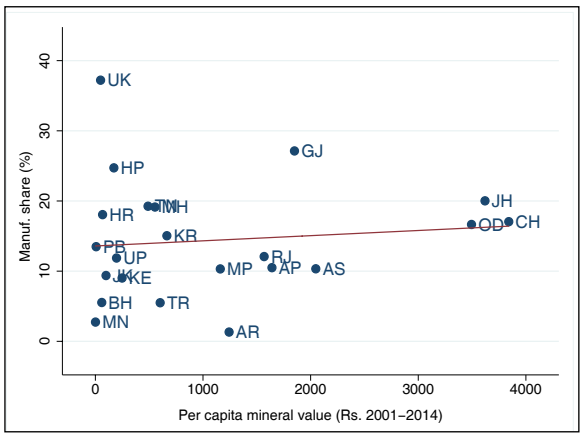

13.35 संबद्ध राज्यों द्वारा किए गए राजकोषीय प्रयासों से भी संसाधन अभिशाप की एक झलक मिल सकती है (जैसे कि हमने एक पूर्ववर्ती अनुच्छेद में GSDP में निजी कर राजस्व के अंश द्वारा जानने का प्रयास किया था)। यह निरंतर घटता दिखाई देगा यदि प्राकृतिक संसाधनों से प्राप्त गैर कर राजस्व पर ही प्रांतीय सरकारें निर्भर रहने लगेंगी। जैसी आशा थी, रेखाचित्र 10क ने 1981-2000 की अवधि में मामूली ऋणात्मक संबंध दर्शाया है। यह संबंध भी अधिक निकट अवधि 2001-14 में स्थिर नहीं रह पाया।

13.36 अंत में, रेखाचित्र 11 में पूर्ववर्ती भाग में परिभाषित प्रशासनिक दक्षता के सूचक को अंकित किया जा रहा

रेखाचित्र 8ख : प्रतिव्यक्ति GSDP संवृद्धि और प्रतिव्यक्ति खनिज मूल्य (2001-2014)

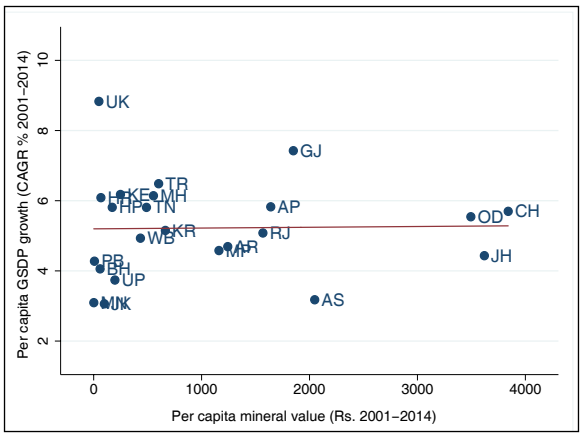

है। यहां भी संसाधन मूल्यों का कोई ऋणात्मक प्रभाव नहीं दिखाई दे रहा। यही नहीं गुजरात के अतिरिक्त एक अन्य संसाधन संपन्न राज्य, छत्तीसगढ़, बहुत अच्छा निष्पादन करता दिखाई दे रहा है। यहां भी प्रशासनिक दक्षता औसत से उच्च है।

13.37 उपर्युक्त चर्चा-विश्लेषण के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि भारत के राज्यों में संसाधन अभिशाप के पक्ष या विपक्ष में कोई ठोस साक्ष्य नहीं मिल पा रहा। किन्तु GSDP और उपभोग के संदर्भ में हमारे परिणाम कुछ सशक्त अवश्य रहे हैं। विनिर्माण के अंश और प्रशासनिक दक्षता के साथ कोई ऋणात्मक संबंध नहीं दिखाई पड़ा है तो कोई सशक्त धनात्मक संबंध भी नहीं

[13] इस प्रतीपगमन में गोआ और मेघालय बहिष्शायी होने के कारण शामिल नहीं किए गए हैं।

[14] GSDP में विनिर्माण का अंश 2011-12 से 2013-14 का औसत है। यह बेंच की 2011-12 की श्रृंखला पर आधारित है।

मिला है। इसका अर्थ है कि संसाधन संपन्न राज्यों को संसाधन अभिशाप से स्वयं को मुक्त रखने के सतत् प्रयासों को और सबल बनाना होगा (ताकि भविष्य में भी यह आशंका दूर ही रहे)। हमारे उपर्युक्त रेखाचित्र बहुत ही स्पष्ट दिखा रहे हैं कि कुछ राज्य, सबसे उत्कृष्ट रूप से गुजरात, महत्वपूर्ण संसाधन संपन्नता के बावजूद भी अनेक सूचकों में औसत से कहीं बेहतर निष्पादन कर रहे हैं।

VI. निष्कर्ष

13.38 हां यह बहुत संभव है कि जहां तक 'RRT अभिशाप' और 'प्राकृतिक संसाधन अभिशाप' वैध हों उनका कारण सम्पर्क की त्रुटियों और विशेषकर भौतिक, वित्तीय और डिजिटल संरचनाओं की त्रुटियों में खोजा जा सकता है। ये राज्य प्राय: इन त्रुटियों से ग्रस्त रहते है। यह उत्तरपूर्वी राज्यों ही नहीं अनेक और संसाधन संपन्न राज्यों के लिए भी सत्य है। युद्ध स्तर पर सम्पर्क-संयोजन का विकास करना (सरकार ने प्रधानमंत्री जनधन योजना के माध्यम से वित्तीय समाहन का बड़ा प्रयास किया भी है), ऑप्टीकल फाइबर तंत्र को और तेजी से विकसित करना ऐसे कार्य हैं जो उक्त अभिशापों की गहनता को कम करेंगे। फिर भी हम अपने सभी अवलोकनों और निष्कर्षों के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण नीतिगत सुझाव तो दे ही सकते हैं।

रेखाचित्र 10क : राजकोषीय प्रयास और प्रतिव्यक्ति खनिज मूल्य (1981-2000)

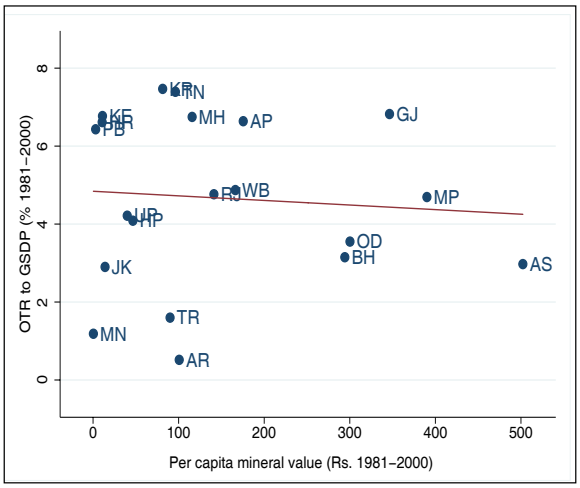

रेखाचित्र 10ख : राजकोषीय प्रयास और प्रतिव्यक्ति खनिज मूल्य (2001-14)

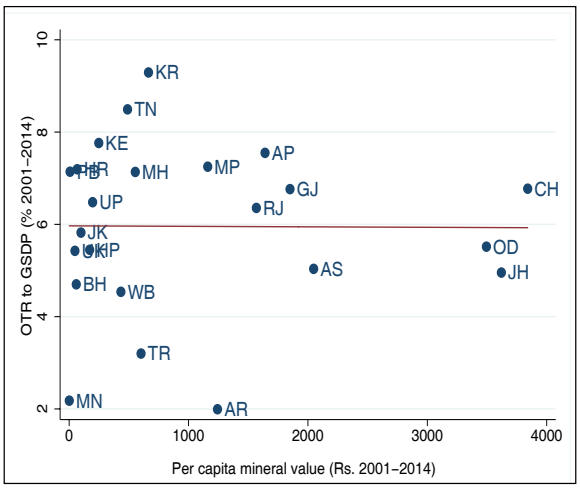

रेखाचित्र 11 : प्रशासनिक दक्षता सूचक और प्रतिव्यक्ति खनिज मूल्य (2013-14)

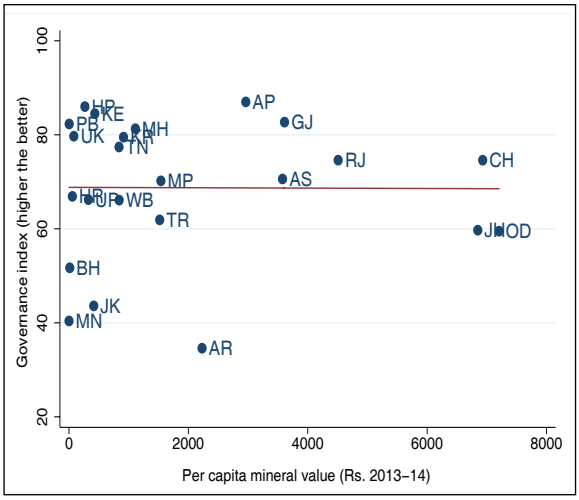

(क) पुन:वितरणात्मक संसाधन अंतरण (RRT)

13.39 कुल मिलाकर लग रहा है कि आर्थिक विकास के प्रति नया दृष्टिकोण सही होना चाहिए। जिसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ''सहायता अभिशाप'' कहा जाता है- उसी का कोई न कोई स्वरूप इन अंतरणों के साथ भी जुड़ा हो सकता है।

13.40 यदि ऐसा है, तो इस दृष्टिकोण से नीतिनिर्माण के लिए क्या सीख मिल सकती है? स्पष्टत: RRT को पूरी तरह बंद करने का सुझाव तो नहीं हो सकता, क्योंकि एक संघीय व्यवस्था केन्द्र से कुछ न कुछ पुन:वितरण करने की अपेक्षा अवश्यक करती है। इसे

सदैव अपेक्षाकृत कम विकसित क्षेत्रों/प्रांतों की ओर संसाधनों के प्रवाह करने ही होंगे। किन्तु केन्द्र को ऐसी विधियां खोज कर निकालनी होंगी कि इस द्वारा दिए गए अंतरणों की राशियों का अधिक उत्पादक रूप में प्रयोग संभव हो सके।

13.41 राज्यों को पुन:वितरणात्मक संसाधन प्रवाहों के परिमाण और रचना का निर्धारण करते समय अनेक कारकों पर ध्यान देना जरूरी होगा। सहकारी संघवाद की भावना के अनुरूप विभिन्न राज्यों के सरोकारों और वरीयताओं पर ध्यान देते हुए हमारे इन सुझावों को संशोधित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए:

संसाधनों को सीधे परिवारों की ओर उन्मुख करना: एक संभावना यह हो सकती है कि RRT का एक अंश सीधे ही किसी UBI जैसे प्रकल्प के माध्यम से परिवारों की ओर मोड़ दिया जाए। हमारे अध्याय 9 के विश्लेषण ने समझाया है कि वर्तमान विकास हस्तक्षेपों में लक्षिता को लेकर अनेक समस्याएं विद्यमान हैं और सीधे परिवारों को संसाधन अंतरण से इनमें से कुछ का समाधान अवश्य हो जाएगा।

अन्तरणों को राजकोषीय निष्पादन में सुधार के साथ जोड़ना : उपर्युक्त विश्लेषण में पाए गए राजकोषीय पूर्व रूझानों को देखते हुए कि उच्चतर अंतरणों से राज्य के अपने कर प्रयास शिथिल हो सकते हैं, यह प्रयास किया जा सकता है कि अंतरण को किसी न किसी रूप से कर राजस्व जुटाने के बेहतर प्रयासों के साथ जोड़ दिया जाए। संभवत: भविष्य में कोई वित्त आयोग 12वें आयोग द्वारा अंतरण कर प्रयास संबंध को पुन: स्थापित कर सकेगा। हम तो यही कहेंगे कि इसका भार मान 12वें आयोग की सिफारिश से भी अधिक होना चाहिए।

प्रशासन दशानुसार अन्तरण : हमने देखा है कि कई संसाधन संपन्न राज्य सरकारों का प्रशासन स्तर पर निष्पादन भी अच्छा रहा है। संभवत: राज्यों की अंतरित संसाधनों को भली प्रकार प्रयोग कर पाने की क्षमता का भी यहां बहुत महत्व हो सकता है। बेहतर प्रशासकीय और अच्छे संस्थागत व्यवहार को बढ़ावा देने के लिए अंतरण की प्रक्रिया में ही कुछ अवलोकनीय संस्थागत सूचकों को ऐसे कोष अंतरण पाने की कसौटी बनाया जा सकता है।

(ख) प्राकृतिक संसाधन से प्राप्त राजस्व

इस अध्याय का विश्लेषण तो यही सुझा रहा है कि भारत में अन्य देशों में दिखाई पड़े ''संसाधन अभिशाप'' को कोई साक्ष्य नहीं मिल रहा। वास्तव में ऋणात्मक सह संबंध का वर्ष 2000 के बाद से भंग हो जाना यही सुझा रहा है कि नवगठित खनिज संपन्न राज्यों ने इनका प्रबंधन पूर्ववर्ती राजनीतिक इकाइयों की अपेक्षा कम दक्षताहीनता के साथ किया है।

13.43 किन्तु खनिज संपदा के वरदान होने का भी कोई साक्ष्य नहीं मिल पा रहा है, जैसा कि पुराने अर्थशास्त्री मानते रहे है। इससे यही सुझाव मिलता है कि संसाधनों के बेहतर प्रयोग के लिए प्रशासनिक व्यवस्था को सुधारने की आवश्यकता है, इन संसाधनों पर अधिक निर्भर रहे प्रांतों में तो ये सुधार विशेषरूप से अनिवार्य हैं।

13.44 अभी तक राजस्व व्यवस्था ऐसी रही है कि राज्य सरकारों को खनिज संसाधनों की निकासी या खनन पर एक रॉयल्टी मिलती है। किन्तु वर्तमान व्यवस्था में भी संसाधन विदोहन के फलों के विभाजन में नागरिकों को भागीदार बनाया जा सकता है। नागरिक भागीदारी की एक ठोस व्यवस्था बड़े स्तर पर भ्रष्टाचार की रोकथाम, और संसाधनों के अतिशय विद्रोहन को रोकने में बहुत सहायक सिद्ध होगी।

13.45 खनिजों से प्राप्त राजस्व का संबद्ध राज्यों के नागरिकों के विकास और हित संवर्धन में प्रयोग सुनिश्चित करने के लिए ही खान एवं खनिज (विकास एवं नियमन) संशोधन अधिनियम, 2015 ने इन बातों को समाहित किया है :

- 'खनन कार्यों' से प्रभावित जनपदों में 'जनपद खनिज संस्थान' (DMF) नाम न्यासों की स्थापना होगी।
- इन DMFs की रचना और कार्यों का निर्धारण राज्य सरकारें करेंगी। यह संस्थान उन व्यक्तियों के हितार्थ कार्य करेंगे जो खनन से प्रभावित हो रहे हों।

13.46 नागरिक भागीदारी बढ़ाने का एक तरीका तो ऐसे कोष की स्थापना हो सकता है, जिसमें सारा खनन

राजस्व जमा हुआ करे। मान्यता यही है कि खनिज संपदा जनगण की वह सांझी संपदा है जिस पर सरकार का अधिकार जन प्रतिनिधि न्यायाधिकारी के रूप में ही है। इस जनगण में भावी पीढ़ियां भी सम्मिलित हैं। अत: प्राकृतिक संसाधनों का राजस्व एक बर्बादी रहित स्थायी कोष में जमा होना चाहिए। इस कोष से सृजित वास्तविक आय का उन नागरिकों में विभाजन होना चाहिए जो खनन विदोहन में पणधारी हो और इससे प्रभावित हुए हों।

13.47 जनपद स्तर पर कोष की रचना का विचार सराहनीय है। यह इस बात का भी प्रमाण है कि राज्य भविष्य में संभावित ''संसाधन अभिशाप'' के प्रभावों के प्रति भी सजग है। फिर भी अन्य अधिक सुगठित एवं सक्रिय खनन प्रभाविता जन भागीदारी के प्रस्तावों-विचारों पर भी चिन्तन-मनन् होना चाहिए।

13.48 एक विकल्प संसाधन विदोहन से प्राप्त राशियों का किसी UBI प्रणाली के माध्यम से संबद्ध व्यक्तियों के खातों में अंतरण हो सकता है। किन्तु इस आय अंतरण को प्रभावी बनाने और व्यक्तियों को संसाधनों के प्रबंधन में अपना हित देखने को विवश करने के लिए UBI पश्चात निर्वर्त्य आय पर कर लगा उसके राजस्व को विकास कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है। संभव है UBI और कराधान की यह युति नागरिकों के करों के प्रति दृष्टिकोण को अधिक उदार बना दे क्योंकि उन्हें यहां स्पष्टत: सामाजिक अनुबंध का उनके अपने हित संवर्धन में योगदान दिखाई दे जाएगा।

13.49 भारत में ऐसे उपायों के साथ कभी प्रयोग नहीं हुए हैं। किन्तु अनेक देश स्थायी कोषों का प्रभावी रूप में प्रयोग कर रहे हैं। हां UBI के लिए तो अभी प्रारंभिक अध्ययन प्रकल्पों पर ही काम चल रहा है। भारत में इन प्रक्रियाओं को प्रारंभ करने का विचार किया जा सकता है, शायद इसीलिए कि इनके जोखिम भारत भूमि पर किसी दिन ''संसाधन अभिशाप'' के अवतरित हो जाने की लागतों के समक्ष बहुत तुक्ष्य होंगे (विश्व के अनेक देश इस अभिशाप की विभीषिका को झेल रहे हैं)।

13.50 सारांश के रूप में, पुन: वितरित संसाधनों या प्राकृतिक संसाधनों से अनायास प्राप्त होने वाली समृद्धि लोकतांत्रिक भारत जैसी व्यवस्थाओं में भी आश्चर्यकारी व्याधियों को जन्म दे सकती है। उन्हें पहचान कर सृजनात्मक रूप से प्रतिक्रिया करने पर हम इतिहास की भूलों को दोहराने से बच सकते हैं।

बॉक्स 1 : गोआ में खनन पर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय

WD 435/2012 (गोआ फाउंडेशन बनाम भारत संघ एवं अन्य गोआ खनन केस) में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के विषय में अनेक महत्वपूर्ण निर्णयों की एक श्रृंखला की परिणति था। यहां सर्वोच्च न्यायालय ने गोआ में खनन की उच्च सीमा निर्धारित करने और गोआ लोहअस्यक स्थायी कोष की रचना के आदेश दिए हैं, ये दोनों अन्तर्पीढ़ी समता और धारणीय विकास के तकाजों को पूरा करेंगे। जब इस पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले प्रतिपादित सार्वजनिक न्याय सिद्धांत, विशेषकर CA 4154/2000 (फोमेंटो रिसोर्ट्स एंड अन्य बनाम भारत संघ एंड अन्य, 2G स्पेक्ट्रम केस) आदि के साथ विचार करते हैं तो खनिजों के संबंध में एक नया ही चित्र उभर कर आता है।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के लिए क्या निहितार्थ होंगे?

खनिजों सहित सभी प्राकृतिक संसाधन हमारी सांझी विरासत है, जिसे भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखना हमारी जिम्मेदारी है। भूमिगत खनिजों पर प्राय: राज्य सरकार का अधिकार माना जाता है और सागर तल के खनिजों पर केन्द्र का। अत: राज्य जनता के न्यासी के रूप में इनका प्रबंधन करने वाले अधिकारी हैं। गोआ में खनन पर उच्चतम सीमा लगाने का तात्पर्य यही है कि ये खनिज आगे कई पीढ़ियों को भी सुलभ होते रहें साथ ही सीमित विदोहन की अनुमति पर्यावरण को संभावित क्षति को भी सीमित रखेगी।

गोआ लोह अस्यक स्थायी कोष के गठन के प्रस्ताव पर विचार करने का आग्रह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि यह न्यायिक आदेश से गठित होने की संभावना से पूर्ण है। नॉर्वे तथा 50 से अधिक अन्य देशों ने तेल और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन से प्राप्त आर्थिक लगान भाड़े पर आधारित स्थायी कोषों की स्थापना पहले ही की हुई है। इनमें सबसे पुराना कोष तो टेक्सास में 1876 में स्थापित किया गया था।

संदर्भ

1. Kochhar, K. et. al. (2006),*"India's Pattern of Development: What Happened, What Follows?",* Journal of Monetary Economics, 53(5).

2. Easterly, William (2003), *"Can Foreign Aid Buy Growth?",* The Journal of Economic Perspectives, 17(3).

3. Rajan, Raghuram & A. Subramanian (2007), *"Does Aid Affect Governance?", The American Economic Review AEA Papers and Proceedings, 97(2).*

4. Bräutigam, D. A. & Stephen Knack (2004), *"Foreign Aid, Institutions, and Governance in Sub-Saharan Africa", Economic Development and Cultural Change, 52(2).*

5. Azam, Jean-Paul, S. Devarajan & S. A. O'Connell (1999), *"Aid Dependence Reconsidered", World Bank Policy Paper No. 2144.*

6. Adam, C. S. & S. A. O'Connell (1999), *"Aid, Taxation and Development in Sub-Saharan Africa",* Economics and Politics, II (3).

7. Max Corden, W. & J.P. Neary (1982), *"Booming Sector and Deindustrialization in a Small Open Economy",* Economic Journal, 92.

8. Ross, M. L. (2014), *"What have we Learned about the Resource curse?"* available at https://ssrn.com/ abstract=k2342668.

9. Sachs, J. D. and Andrew M. Warner (1995), *"Natural Resource Abundance and Economic Growth",* NBER Working Paper 5398.

10. Sala-i-Martin, X. and Arvind Subramanian (2003), *"Addressing the Natural Resource Curse: An Illustration from Nigeria",* Journal of African Economies, 22(4).

परिशिष्ट

1. निम्न रेखाचित्र सकल अंतरण और RRT प्रवाह (प्रथम परिभाषा के अनुसार) दर्शा रहा है। ये दोनों संबद्ध राज्यों के GSDP में अंश के रूप में अंकित किए गए हैं और 1993-94 से 2014-15 की अवधि के औसत स्तर है। परिभाषा D1 के अनुसार 10 प्रदेशों में RRT शून्य या ऋणात्मक हैं (पं. बंगाल, आंध्र प्रदेश, गोआ, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडू, पंजाब, गुजरात, हरियाण और महाराष्ट्र)।

रेखाचित्र A1 : **GSDP के अनुपात के रूप में सकल अन्तरण और RRT**

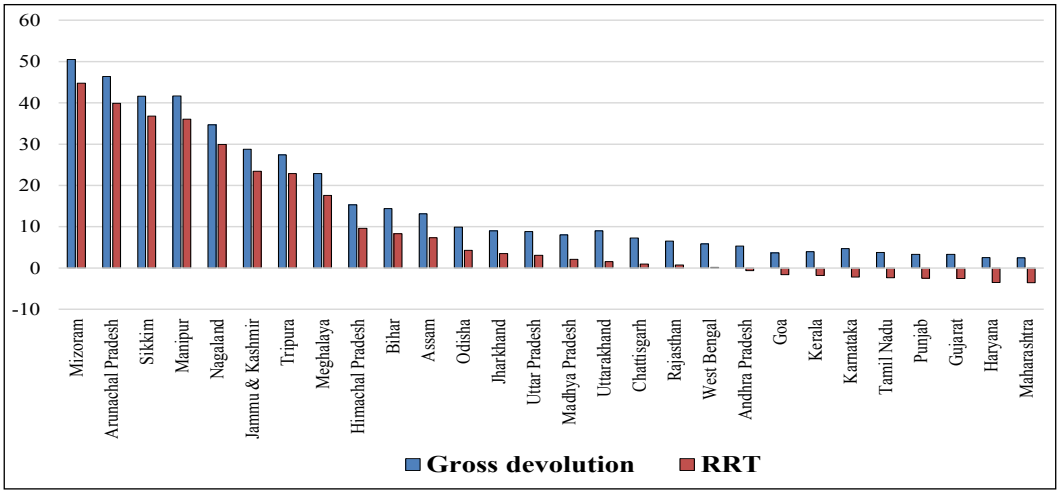

2. सहायक चर (IV) प्रतीपगमन : इस प्रतीपगमन के लिए दो IV सुझाए गए हैं :

   (i) राज्यों की राजधानी का नई दिल्ली से अन्तर, और

   (ii) राज्य की राजधानी का निकटतम अंतर्राष्ट्रीय सीमा से अंतर।

इन मापकों की शाब्दिक व्याख्या नहीं होनी चाहिए। ये तो संसाधन अंतरण को प्रभावित कर सकने वाले गैर-आर्थिक कारकों के लिए निमित्तमात्र हैं। उदाहरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय सीमा से अंतर का तात्पर्य सामरिक कारणों से अन्तरण से हो सकता है। क्या ये चर उपयुक्त ''निमित्त'' हैं? रेखाचित्र A2 और A3 में इन सहायक चरों के अनुसार RRT, को अंकित किया गया है। इसे हम IV प्रतीपगमन का प्रथम सोपान कह सकते हैं। इन चित्रों में एक बहुत सशक्त, सांख्यिकी की दृष्टि से महत्वपूर्ण संबंध दिखाई दे रहा है। उसका चिन्ह भी अपेक्षा के अनुरूप है : निकटतम अंतर्राष्ट्रीय सीमा से जितनी अधिक दूरी उतना ही कम RRT (रेखाचित्र A2)। इन सभी प्रतीपगमनों में सिक्किम को शामिल नहीं किया गया है।

रेखाचित्र A2 : RRT और अंतर्राष्ट्रीय सीमा से अन्तर

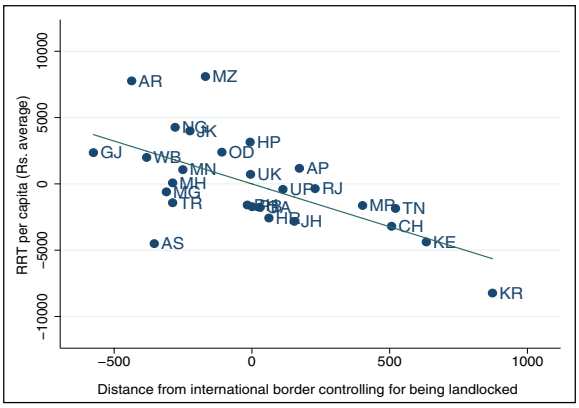

रेखाचित्र A3 : RRT और नई दिल्ली से अंतर